स्नातक प्रथम खण्ड हिंदी प्रतिष्ठा पाठ्यक्रम पर आधारित
प्रस्तुति : प्रो० हरेकृष्ण झा 'हरि'
हिंदी विभाग, जे० एन० कॉलेज, मधुबनी

प्रश्न : हिंदी साहित्येतिहास-लेखन परम्परा का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर : हिंदी साहित्येतिहास-लेखन परम्परा का शुभारम्भ फ्रेंच विद्वान् गार्सा द तासी द्वारा फ्रेंच भाषा में लिखित ग्रंथ 'हिन्दुई और हिन्दुस्तानी साहित्य का इतिहास (Historic de la Literalure Hindoui and Hindustani) से माना जाता है जिसका प्रथम 1839 एवं द्वितीय भाग 1846-47 में प्रकाशित हुआ। इसमें सत्तर कवियों का विवरण है जिनमें आधे से अधिक उर्दू के हैं। बाद में डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने इसके हिंदी अंश का अनुवाद 'हिन्दुई साहित्य का इतिहास' नाम से किया है जो हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद से प्रकाशित है।

इस ग्रंथ में न कवियों का काल क्रमानुसार विवरण है, न काल-विभाजन और न प्रवृत्ति निरूपण। उन्होंने केवल कवियों के वर्ण क्रमानुसार विवरण ही प्रस्तुत किया है।

हिंदी भाषा में प्रथम हिंदी साहित्य का इतिहास लेखक होने का श्रेय शिवसिंह सेंगर को प्राप्त है जिन्होंने शिवसिंह सरोज की रचना 1883 में की। 'सरोज' में लगभग एक हजार कवियों की परिचयात्मक टिप्पणियाँ और उनके काव्यों के उदाहरण संकलित हैं। कवियों का तिथिक्रम भ्रांत है और अधिकतर उपस्थिति काल को उत्पत्ति काल मान लिया गया है। श्री किशोरी लाल गुप्त ने अपने 'सरोज सर्वेक्षण' सरोज की त्रुटियों एवं भ्रांतियों के निराकरण का प्रयास सप्रमाण किया है।

सन् 1889 में प्रकाशित एवं अंग्रेज विद्वान सर जार्ज ग्रियर्सन द्वारा रचित 'मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक को तीसरा इतिहास कहा गया है। इस ग्रंथ में काल-विभाजन, विभिन्न ग्यारह कालों की संक्षिप्त सामान्य प्रवृत्तियाँ निरूपित की गयी हैं। परन्तु इस काल-विभाजन की त्रुटि यह है कि इसका कोई सुनिश्चित आधार नहीं है। न कवि को न काव्य-प्रकृति को और न किसी शासक को काल-विभाग का आधार बनाया गया है। इसमें कवि क्रम संख्या 952 है परन्तु इसमें वर्णित कवि 951 ही हैं। 706 संख्या पर किसी कवि का वर्णन न होकर हिंदी और मैथिली नाटकों पर टिप्पणी है। किशोरी लाल गुप्त ने इसका अनुवाद 'हिंदी साहित्य का प्रथम इतिहास' नाम से किया और ग्रियर्सन की तिथि क्रम एवं अन्य सूचना सम्बन्धी भूल-भ्रांतियों को सुधारने का प्रयास किया।

मिश्रबन्धुओं ने 'मिश्रबन्धु विनोद' नाम से चार भागों में प्रायः पाँच हजार कवियों का इतिहास संकलित किया और प्रान्तीय परिपाटी की कुछ आलोचनात्मक प्रवृत्ति भी दिखाई जिसके प्रथम तीन भाग 1913 ई० में और अंतिम भाग सन् 1934 ई० में प्रकाशित हुआ। विनोद का महत्त्व अतुल कच्ची सामग्री प्रस्तुत करने में है जिसका उपयोग आचार्य शुक्ल ने भी साभार किया है।

एफ० ई० के ने 1920 ई० में 'ए हिस्ट्री ऑफ हिंदी लिटरेचर' नामक एक छोटी सी परिचयात्मक पुस्तक लिखी जिसमें साहित्य की प्रगति को ध्यान में रखकर इतिहास की रूपरेखा

निर्धारित की गयी है।

3 इनकी पहली भूल यह है कि ये हिंदी को आदिकाल को डेढ़-दो सौ वर्ष आगे बढ़ा देते हैं। वस्तुतः इसका आरम्भ काल इसके पूर्व है। दूसरी भूल यह है कि ये वैष्णव कवियों में कबीर और जायसी को भी सम्मिलित कर लेते हैं।

हिंदी साहित्य का सुव्यवस्थित, वैज्ञानिक और प्रवृत्तिमूलक इतिहास लिखने का गौरव आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को है जो 'हिंदी साहित्य का इतिहास' नाम से सन् 1927 ई० में प्रकाशित हुआ। शुक्ल जी की इतिहास सम्बन्धी धारणा बड़ी ही सुस्पष्ट और सुलझी हुई है तथा वे जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में परिवर्तन और सामंजस्य दिखाना साहित्य का इतिहास मानते हैं और अपनी इस स्थापना को बड़ी सक्षमता के साथ उद्धृत एवं कार्यान्वित करते हैं। साहित्य की धारा को विभिन्न परिस्थितियों - राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक आदि से प्रभावित दिखाते हुए, वे काल विशेष की प्रमुख प्रवृत्ति निर्धारित करते हैं और उसी के आधार पर उस काल का नामकरण करते हैं और उस प्रवृत्ति का अनुगमन करने वाले कवियों को उस समय का प्रतिनिधि कवि मानते हैं और शेष को फुटकर खाता में स्थान दे देते हैं। आचार्य शुक्ल का काल-विभाजन इस प्रकार है —

4 Wed

आदिकाल (वीरगाथा काल - संवत् 1050 से 1375
पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल - संवत् 1375 से 1700
उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल - संवत् 1700 से 1900
आधुनिक काल (गद्यकाल) - संवत् 1900 से आज तक

शुक्ल जी के इतिहास की शक्ति के साथ उसकी सीमाएँ भी हैं। शुक्ल जी की आज एकाधिक उद्भावनाएँ और मान्यताएँ खंडित हो गयी हैं। उदाहरणार्थ, आदिकाल का वीरगाथा काल नामकरण और आदिकवि विद्यापति को फुटकर खाता में स्थान देना तथा भक्तिकाल को विजित और वीर्यहीन जाति का दैन्य-निवेदन मानना आदि। फिर भी काव्यधाराओं के गंभीर एवं व्यवस्थित विवेचना, कवियों की विशेषताओं का विश्लेषण तथा भाषा-शैली के गुण-दोषों के निरूपण आदि कई दृष्टियों से शुक्ल जी का इतिहास आज भी बेजोड़ है।

डॉ० श्यामसुन्दर दास का 'हिंदी भाषा और साहित्य' 1930 में प्रकाशित हुआ जो काल-विभाजन और प्रवृत्ति-निरूपण की दृष्टि से शुक्ल जी के इतिहास से समानता रखते हुए भी अपनी एक अलग विशेषता है और वह है साहित्यिक प्रवृत्ति का विकास आदिकाल से आधुनिक काल तक दिखाना। जैसे वीरगाथा की प्रवृत्ति को चन्दवरदाई से भूषण और लाल होते हुए 'वियोगी हरि' तक विवेचित करना। साहित्येतिहास में प्रवृत्तिनिरूपण का यह दृष्टिकोण नया है परन्तु इसमें एक त्रुटि आ गयी है और वह यह कि बाबू साहब वीरगाथा काल मानते हैं 1050 से 1400 तक किन्तु उसका विकास दिखाते हैं अब तक। प्रवृत्तियाँ शाश्वत हैं पर साहित्येतिहास में उसका सातत्य नहीं, प्रमुखत्व अपेक्षित है।

Notes

1931 में पं० रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' का हिंदी साहित्य का इतिहास प्रकाशित हुआ जिसकी विस्तृत भूमिका में इतिहास की अतिव्याप्तिपूर्ण परिभाषा देते हुए उसका (साहित्य) का धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, भूगोल आदि से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया गया है। उन्होंने हिंदी साहित्य को बाल्यावस्था, किशोरावस्था और प्रौढ़ा - इन तीन कालों में विभाजित किया है जो साहित्यिक प्रौढ़ता और उपलब्धि की दृष्टि से अनुपयुक्त है। आदिकाल को जय काव्य और रीतिकाल को कलाकाल के नाम से अभिहित किया गया है।

'हिंदी भाषा और उसके साहित्य का विकास' पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के पटना विश्वविद्यालय में दिए गये व्याख्यानों का संग्रह है जिसमें भाषा और साहित्य की पाण्डित्य एवं कवित्वपूर्ण आलोचना है। डॉ० सूर्यकांत शास्त्री के 'हिंदी साहित्य विवेचनात्मक इतिहास' में अंग्रेजी साहित्य से तुलना की प्रवृत्ति अधिक है। भाषा का अलंकरण भी कुछ विशेष हो गया है। डॉ० रामकुमार वर्मा का 'हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' 1938 में प्रकाशित हुआ जो उनका शोध-प्रबंध है जिसमें प्रायः प्राप्त समस्त सामग्री का उपयोग किया गया है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी 'हिंदी साहित्य की भूमिका' 1940 में प्रकाश में आई जिसमें शुक्लोत्तर विधेयवादी ऐतिहासिक प्रणाली से भिन्न साहित्यिक इतिहास लिखने का प्रयत्न है तथा हिंदी साहित्य को भारतीय चिंतनधारा के सहज विकास के रूप में देखा गया है। उन्होंने प्रथम बार निर्वैयक्तिक और जातीय प्रणाली पर इतिहास का विवेचन करते हुए हिंदी का सम्बन्ध अखिल भारतीय भाषाओं - संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि से जोड़ा है और इसे उनके अविच्छिन्न प्रवाह के रूप में प्रदर्शित किया है। इतिहास-लेखन के क्षेत्र में उनका यह दृष्टिकोण नवीन है।

सन् 1953 में नागरी प्रचारिणी सभा ने सतरह खण्डों में विभाजित हिंदी साहित्य के वृहत् इतिहास प्रकाशित करने की योजना स्वीकृत की। इसके कई खण्ड प्रकाशित भी हो चुके हैं। कुछ विद्वानों ने उनपर असंतोष भी प्रकट किया है। व्यापक दृष्टि से हिंदी साहित्य का परिपूर्ण इतिहास लिखा जाना अभी शेष है जिसके कारण हैं - सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्षों में साहित्येतिहास के उपादानों की अपूर्णता और अभाव। इन त्रुटियों की ओर विद्वानों का ध्यान गया है और इस दिशा में प्रयास भी हो रहे हैं। डॉ० रामखेलावन पाण्डेय का हिंदी साहित्य का नया इतिहास, मोहन अवस्थी का हिंदी साहित्य का अद्यतन इतिहास, डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त का हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, डॉ० वासुदेव सिंह का 'हिंदी साहित्य का इतिहास', आदि उल्लेख्य हैं।

हिंदी साहित्य का इतिहास लिखना एक जटिल कार्य है। मानव-मन के अनुरूप सर्वांग रूप से समस्त जिज्ञासाओं की पूर्ति निश्चय ही कठिन है। परन्तु इस दिशा विद्वानों द्वारा भगीरथ-श्रम किए जा रहे हैं और काफी सफलता भी प्राप्त हुई है। संभव इन प्रयासों से भविष्य हिंदी साहित्य का इतिहास भी अपने पूर्ण रूप में प्रतिबिंबित होगा।

स्नातक प्रथम खण्ड प्रतिष्ठा - हिंदी पाठ्यक्रम पर आधारित
प्रस्तुति : प्रो० हरेकृष्ण झा 'हरि', हिंदी विभाग, जे० एन० कॉलेज मधुबनी

प्रश्न : हिंदी कृष्णकाव्य परम्परा का प्रवृत्तिगत विकास निरूपित करते हुए सूरदास के महत्त्व का आकलन कीजिए।

7 Sat

उत्तर :

श्रीकृष्ण का प्राचीनतम उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है जिसके अनुसार वे स्तोता-ऋषि सिद्ध होते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में श्रीकृष्ण का उल्लेख देवकीपुत्र घोर आंगिरस के शिष्य एवं वैदिक ऋषि के रूप में हुआ है। महाभारत के प्रारंभिक अंशों में श्रीकृष्ण पाण्डवों के सखा एवं प्रभावशाली राजनीतिज्ञ के रूप में तथा अंतिम अंशों में विष्णु के अवतार के रूप में चित्रित हुए हैं। परवर्ती पुराणों- हरिवंश, ब्रह्म, विष्णु, वामन, वायु, भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि में उनकी बाल्यावस्था सम्बन्धी आख्यानों और गोप-जीवन सम्बन्धी क्रीड़ाओं में उत्तरोत्तर वृद्धि दृष्टिगोचर होती है। श्रीकृष्ण एवं गोपियों की रासलीला का विस्तृत रूप में निरूपण लगभग पाँचवीं से आठवीं-नौवीं शताब्दी में रचित भागवत पुराण में हुआ है। इसमें कृष्ण के बाल्यकाल से लेकर द्वारका प्रवास तक की घटनाएँ विस्तार से वर्णित हैं। इस प्रकार वैदिक और संस्कृत-साहित्य में श्रीकृष्ण के तीन रूप मिलते हैं-

(i) ऋषि एवं धर्म उपदेशक

8 Sun

(ii) नीति कुशल क्षत्रिय नरेश

(iii) बाल और किशोर के रूप में गोप लीला करनेवाले अवतारी कृष्ण

प्रथम का पूर्ण विकास गीता में, द्वितीय का महाभारत में और तृतीय का भागवत तथा अन्य पुराणों में मिलता है।

धर्म का प्रवाह - कर्म, ज्ञान और भक्ति इन तीन धाराओं में चलता है। इन तीनों के सामंजस्य से धर्म अपनी पूर्ण सजीव दशा में रहता है। किसी एक के अभाव में वह विकलांग हो जाता है। धर्म कर्म के बिना लंगड़ा, ज्ञान के बिना अंधा और भक्ति के बिना निष्प्राण हो जाता है। सामान्य जनता का आधार कर्म और भक्ति ही होते हैं। बौद्ध धर्म की विकृति और वज्रयान में उसकी परिणति के बाद सिद्ध और कापालिक देश के पूर्वी भागों में बहुत रम गये। सामान्य जनता की धर्म-भावना दब गयी। एक ओर सिद्ध लोग अनुष्ठान गर्हित विधान, तीर्थाटन, गुह्य रहस्य के जाल में जनता को उलझा रहे थे। वहीं दूसरी ओर शास्त्रज्ञ, विद्वानों में इसकी प्रतिक्रिया हो रही थी जिसके फलस्वरूप शंकराचार्य ने वेदान्त दर्शन को जन्म दिया और पुनः वैदिक धारा प्रवाहित हुई।

December 2005

शंकराचार्य भारत के दार्शनिक आकाश के सबसे प्रभापूर्ण नक्षत्र थे जिन्होंने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की। शंकराचार्य के अद्वैतवेदान्त के खण्डन में दक्षिण में चार आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ - रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, आचार्य निम्बार्क और विष्णुस्वामी। रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद की स्थापना की। रामानुजाचार्य से प्रभावित रामानन्दी वैष्णव हुए और इनका सम्प्रदाय श्री सम्प्रदाय कहलाया। मध्वाचार्य ने अद्वैतवाद की स्थापना की। इस सम्प्रदाय से ब्रह्म सम्प्रदाय उद्भूत हुआ। बारहवीं शताब्दी में आविर्भूत आचार्य निम्बार्क ने [illegible] की प्रतिष्ठापना

Notes

9 इससे सनकादि सम्प्रदाय उद्भूत हुआ। इस सम्प्रदाय में राधा पूज्य मानी गयीं। आचार्य विष्णु स्वामी ने शुद्धाद्वैतवाद का सिद्धान्त दिया और इस सम्प्रदाय में भी राधा को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। इसी से रुद्र सम्प्रदाय उद्भूत हुआ। सोलहवीं शताब्दी में इसी रुद्र सम्प्रदाय में स्वामी वल्लभाचार्य का पदार्पण हुआ। इन्होंने पुष्टिमार्ग की स्थापना की। हिंदी का मध्ययुगीन साहित्य इसी पर आधारित है और श्रीकृष्ण भक्ति साहित्य इसी को आधार मानकर चला है।

महाप्रभु वल्लभाचार्य ने उत्तर भारत में आकर अपने उपास्य श्रीकृष्ण की जन्मभूमि ब्रजप्रदेश को अपनी साधनाभूमि बनाया। उन्होंने गोवर्द्धन पर्वत पर श्रीनाथ जी का एक विशाल और भव्य मंदिर का निर्माण करवाया। स्वामी वल्लभाचार्य के पुत्र स्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने पुष्टिमार्गीय भक्तों में से आठ को वरीयता प्रदान की। ये आठ कवि 'अष्टछाप' के कवि कहलाते हैं। इनमें प्रथम चार – सूरदास, कृष्णदास, परमानंद दास और कुंभनदास स्वामी वल्लभाचार्य के शिष्य थे और शेष चार – छीतस्वामी, नंददास, चतुर्भुजदास तथा गोविन्द स्वामी श्रीविट्ठलनाथ जी के। हिंदी कृष्ण काव्य में भगवान् की लीला एवं रूप-सौन्दर्य के शत-सहस्र पदों में जो मोहक वर्णन मिलते हैं उनका सारा श्रेय अष्टछाप को ही है। अष्टछाप के कवियों में सर्वाधिक प्रतिभाशाली, अद्भुत-कवित्व शक्ति सम्पन्न सूरदास के पदों का संग्रह 'सूरसागर' भक्ति, श्रृंगार एवं माधुर्य का रत्नाकर है।

10 Tue

सूरसागर के आधार पर सूरदास को हिंदी साहित्याकाश का सूर कहा जाता है। सूरदास ने भक्ति के विस्तृत फलक पर सौन्दर्य के श्रृंगारमय सचल चित्र प्रस्तुत कर जो रमणीयता उत्पन्न की, वह अतुलनीय है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का सुप्रसिद्ध कथन है – "आचार्यों की छाप लगी हुई आठ वीणाएँ श्रीकृष्ण की प्रेमलीला का कीर्तन करने उठीं जिनमें सबसे ऊँची, सुरीली और मधुर झनकार अंधे कवि सूरदास की वीणा की थी।"

एक ही प्रकार के परिवेश और एक ही प्रकार के प्रेरणा स्रोतों की देन होने के कारण भक्तिकालीन कृष्ण-कवियों के वर्ण्य विषय एवं शैली में समानताएँ हैं और प्रवृत्तियाँ एक-सी हैं जो इस प्रकार हैं :

(1) बाल-लीला पर विशेष बल :

भक्तिकालीन कृष्ण-कवियों की सर्वाधिक प्रवृत्ति बाललीला की ओर रही है। भक्तिकालीन कृष्ण कवियों ने शैशवावस्था से लेकर किशोरावस्था तक की लीलाओं वर्णन विस्तार से किया है। महाकवि सूरदास ने अपनी बन्द आँखों से बालक श्रीकृष्ण के हावभाव एवं शारीरिक चेष्टाओं का जो स्वाभाविक, यथार्थ और सजीव चित्रण किया है, वह दो आँखों से भी संभव नहीं है। यहाँ एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

Notes

सोवत जानि मौन ह्वै कै रहि करि करि सैन बतावै।
कबहुँ पलक हरि मूँदि लेत हैं कबहुँ अधर फरकावै।
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि, जसुमति मधुरैं गावै,
जो सुख सूर [illegible] अमर मुनि दुर्लभ, सो नँद भामिनि पावै।

(2) सख्य भक्ति-भाव की अभिव्यक्ति :

कृष्ण-कवियों ने सतत सान्निध्य की कामना से सख्य भक्ति-भाव को अपनाया।
मध्यकालीन हिंदी कृष्ण-कवियों ने सखा के रूप में उन्होंने उन्होंने न केवल श्रीकृष्ण की बाल-क्रीड़ाओं का विस्तार से वर्णन किया अपितु सखा के रूप में सम्मिलित होकर कृष्ण साहचर्य का आनन्द भी उठाया। महाकवि सूरदास श्रीकृष्ण के साथ विभिन्न लीलाओं में

की रचनाओं में यह प्रवृत्ति व्यापक रूप में दृष्टिगोचर होती है।

11 Wed

(3) प्रेम के सहज स्वाभाविक रूप का चित्रण :

भक्तिकालीन कृष्ण कवियों ने प्रेम के सहज स्वाभाविक रूप का चित्रण किया है। तात्पर्य यह कि उन्होंने गोपियों और कृष्ण के बीच प्रेम का विकास बाल-साहचर्य के साथ दिखाया है, अकस्मात् आकर्षण से नहीं। यही कारण है कि यह सात्विक प्रेम विरह की विभिन्न अवस्थाओं परिपुष्ट होता रहा है। महाकवि सूरदास ने श्रीकृष्ण राधा के इसी प्रेम का वर्णन इन पंक्तियों में किया है : 'बूझत स्याम कौन तू गोरी / कहाँ रहत काकी तू बेटी देखी नहीं कहूँ ब्रज खोरी'
अथवा 'तुम पै कौन दुहावै गैया / इत चितवत उत धार चलावत यहि सिखयो है मैया।'

(4) वियोग एवं वियोगावस्था का मार्मिक एवं वैविध्यपूर्ण वर्णन :

मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने विरह का वर्णन भ्रमरगीत के अन्तर्गत पूर्ण मनोयोग से मार्मिक एवं वैविध्य रूप में व्यंग्य-विनोद का पुट देकर किया है। विरह-वर्णन में निरन्तरता नहीं आने देने से विरह की विभिन्न अवस्थाओं का प्रभावोत्पादक रूप प्रकट हुआ है और वातावरण में एकरसता भी नहीं आ पाई है। महाकवि सूरदास की इन पंक्तियों में वियोग का मार्मिक रूप एवं वैविध्य द्रष्टव्य है :

मधुबन तुम कत रहत हरे / विरह वियोग स्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे।.... बिन गोपाल बैरिन भई कुंजैं / तब ये लता लगति अति सीतल अब भई विषम ज्वाल की पुंजैं।.... उर में माखन-चोर गड़े / अब कैसहु निकसत नहिं, ऊधो ! तिरछे है जो अड़े।

12 Thu

(5) पुष्टिमार्ग की प्रतिष्ठा :

दार्शनिक दृष्टि से सभी मध्यकालीन कृष्ण भक्त कवियों ने स्वामी वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित पुष्टिमार्ग को अपनाया और अपनी रचनाओं में उसकी पुष्टि की। यही कारण है कि इन कवियों ने बार-बार भगवान् से 'अनुग्रह' की याचना की है। महाकवि सूरदास पुष्टिमार्ग के सर्वश्रेष्ठ कवि थे। उन्होंने लिखा है — 'जापर दीनानाथ ढरै / ताकर केस खसै न सिर ते जो जग बैर परै।' 'प्रभु हौं सब पतितन को टीकौ / और पतित सब द्यौस चारि को हौं तो जनमत ही कौ।'

(6) शृंगार एवं वात्सल्य रसों की प्रमुखता :

सभी कृष्ण भक्त कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रायः शृंगार और वात्सल्य रसों का ही व्यापक समावेश किया है। अन्य रसों को उन्होंने स्वीकार ही नहीं किया है और किया है, तो सर्वथा सांकेतिक रूप में क्योंकि अन्य रस उनकी रुचि के अनुकूल नहीं था।

(7) अधिकांशतः पदों का काव्य-रचना

इस परम्परा के सभी कवियों ने अपनी रचनाएँ पद-शैली में की हैं। वे कवि के साथ-साथ उच्चकोटि के संगीतज्ञ भी थे। उनकी रचनाएँ राग-रागिनी पर आधारित गेय पद हैं। महाकवि सूरदास रचित 'सूरसागर' के पदों के साथ राग-रागिनियों का भी उल्लेख है। वे उच्चकोटि के भक्त-कवि-गायक थे।

December 2005

Notes

(8) अलंकारों का साधन-रूप में प्रयोग :

मध्यकालीन कृष्ण भक्ति कवियों ने अलंकार का प्रयोग साधन के रूप में किया है, न कि साध्य रूप में। उन्होंने कल्पना या अनुभूति के प्रभाव को तीव्रतर बनाने के लिए ही अपने पदों में अलंकारों का प्रयोग किया है। महाकवि सूरदास के पदों में अलंकार प्रयोग तो हुआ है परन्तु वह भाव पर हावी नहीं है।

12 13 14 15 16 17 18

20 22

26 27

(9) काव्य की भाषा ब्रजभाषा :

भक्तिकालीन कृष्णकाव्य के सभी कवियों ने अपने पदों में केवल ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। सूरदास ने अपनी विलक्षण प्रतिभा से ब्रजभाषा को ऐसा सर्वांग रूप दिया जो चार सौ वर्षों तक एकमात्र चलनेवाली भाषा रही।

स्नातक प्रथम खण्ड हिंदी प्रतिष्ठा पाठ्य-क्रम पर आधारित

January प्रस्तुति : प्रो० हरेकृष्ण झा 'हरि', हिंदी विभाग, 2006

जे० एन० कॉलेज, मधुबनी

प्रश्न : रीतिमुक्त काव्य के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए प्रमुख रीतिमुक्त कवियों का परिचय दें।

13 Fri

उत्तर : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने अपने 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' में सन् 1643 से 1843 तक के समय को रीतिकाल की संज्ञा से अभिहित करते हुए 57 काव्यांग विवेचक (आचार्यत्व प्रदर्शक) कवियों को रीतिबद्ध वर्ग में रखा और शेष 46 कवियों को 'रीतिकाल के अन्य कवि' शीर्षक के अन्तर्गत रखा। इसी रीतिबद्धता की तुलना में अन्य आलोचकों ने इस वर्ग के कवियों को रीतिमुक्त कहना प्रारंभ किया। फिर उन कवियों के लिए यही नाम चल पड़ा।

रीतिमुक्त काव्य परम्परा में ऐसे कवियों को स्थान दिया गया है जिन्होंने आत्मानुभूति की प्रेरणा से स्वच्छन्द प्रेम का चित्रण मुक्तक शैली में किया है। डॉ० नगेन्द्र के शब्दों में "यह काव्य हिंदी में स्वच्छन्दतावाद का पूर्वाभास है। इन कवियों ने काव्य के प्रति अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में आत्मपरक दृष्टिकोण की प्रतिष्ठा की और जीवन तथा काव्य में रीति-रूढ़ियों का तिरस्कार कर स्वच्छन्द मार्ग को ग्रहण किया।" इस परम्परा के अनेक कवियों - आलम, घनानंद, बोधा आदि ने न केवल काव्य में अपितु जीवन में भी स्वच्छन्द प्रेम को चरितार्थ किया था। उन हिन्दू कवियों ने मुस्लिम युवतियों से प्रेमकर स्वच्छन्दवादिता का परिचय दिया था। स्वच्छन्द प्रेम की अन्य कोटियाँ सौंदर्यानुभूति, साहसिकता, विरह-वेदना की प्रधानता इनके

14

व्यक्तिगत जीवन में दृष्टिगोचर होती है। इनकी दृष्टि में नारी का व्यक्तित्व आराधना एवं साधना की ऐसी वस्तु है जिस पर वे अपना सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं। इसलिए इनके प्रेम में भी एकोन्मुखता एवं भावना की गंभीरता परिलक्षित होती है। इनके जीवन में विरह वेदना की अधिकता होने के कारण उनमें प्रणय का अत्यन्त स्वच्छ परिष्कृत एवं उदात्त रूप दृष्टिगोचर होता है जिसका मध्यकालीन काव्य में प्रायः अभाव है। यह काव्य वैयक्तिक अनुभूतियों पर आधारित होने के कारण पर्याप्त शक्तिशाली एवं प्रभावोत्पादक सिद्ध होता है।

1. रसखान : प्रस्तुत परम्परा में रचनाकाल की दृष्टि से सर्वप्रथम स्थान रसखानि (1558-1633) को दिया जाता है। ये एक मुस्लिम सरदार थे। परन्तु इनका मूल नाम ज्ञात नहीं है। कविता में रसखान या रसखानि उपनाम का प्रयोग करते थे। इनके रचित ग्रंथों में सुजान रसखानि एवं प्रेमवाटिका उपलब्ध हैं। इन्होंने गोपियों एवं कृष्ण के स्वच्छन्द प्रेम का निरूपण अत्यन्त मार्मिक रूप में किया है। साथ ही कृष्ण के प्रति अपनी भक्ति-भावना की भी व्यंजना गंभीर रूप में की है। इस दृष्टि से इनकी ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

Notes

(क) जा दिन तें वह नंद को छोहरो या वन धेनु चराइ गयो है।
मोहिनी तानन गोधन गावत बेनु बजाइ रिझाइ गयो है।
वा दिन से कछु टोनो सो कै रसखानि हिय मे समाइ गयो है।
कोऊ न काहू की कानि करै सगरो ब्रज बीर बिकाइ गयो है।

(ख) मानुष हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन

February 2006

M	T	W	T	F	S	S
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28					

वस्तुतः रसखानि ने अपने कवित्त-सवैयों में प्रेम के जिस सूक्ष्म भावनात्मक रूप का चित्रण किया है वह अपूर्व है। इनके प्रणय चित्रण में कहीं भी शारीरिकता, नग्नता एवं अश्लीलता दिखाई नहीं पड़ती। सर्वत्र वे भावना के उदात्त एवं गंभीर रूप को प्रस्तुत करते हैं। प्रेम का शुद्ध, स्वच्छ एवं उदात्त तथा गंभीर रूप हिंदी के किसी भी अन्य कृष्ण भक्त कवि में दृष्टिगोचर नहीं होता। अवश्य ही प्रणयानुभूतियों की विशदता एवं गंभीरता की दृष्टि से सूरदास इनसे बहुत आगे हैं तथा कृष्ण के जीवन-चरित को उन्होंने अधिक विस्तार से प्रस्तुत किया है। पर ऐन्द्रिक नग्नता एवं अश्लीलता की दृष्टि उनका काव्य भी निर्दोष एवं आक्षेप मुक्त नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार कृष्ण के प्रति अपने अनुराग की प्रत्यक्ष व्यंजना में भी रसखानि हिंदी के सभी कृष्णभक्त कवियों में केवल मीरा को छोड़ कर सबसे आगे दिखाई पड़ते। फिर भी इन्हें कृष्णभक्त कवियों की परम्परा में स्थापना पर इस परम्परा में स्थान दिए जाने का कारण यह है कि इनमें धर्मपरक भक्तिभावना की अपेक्षा सौंदर्याकर्षणजन्य प्रेम की स्वच्छन्दता अधिक दिखाई पड़ती है। इसमें सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण, सौंदर्यानुरक्तता, रूपासक्ति, विरह-वेदना आदि की अभिव्यक्ति लगभग उसी स्तर एवं शैली में हुई है जिसे इस परम्परा के परवर्ती कवियों ने स्वीकार किया है। रसखान के काव्य का भावपक्ष जितना गंभीर है, शैली पक्ष भी उतना ही प्रौढ़ है।

2. आलम : आलम नाम के अब तक दो कवि माने जाते रहे हैं, एक 'माधवानल कामकंदला' के रचयिता एवं अन्य औरंगजेब के पुत्र मुअज्जम शाह के आश्रित प्रस्तुत परम्परा के कवि। परन्तु अब यह प्रमाणित हो चुका है कि ये दोनों एक ही हैं। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र इस सम्बन्ध में विस्तार से विचार करते हुए इनका रचनाकाल सन् 1583-1623 ई० निश्चित किया है। इनकी रचनाओं में 'माधवानंद कामकंदला', सुदामाचरित, श्याम सनेही, आलम केलि आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें तीन प्रबंधकाव्य हैं और आलमकेलि मुक्तक संग्रह है।

'आलमकेलि' में प्रस्तुत प्रणय चित्रण को समझने के लिए इनके व्यक्तित्व एवं जीवन से सम्बन्धित एक विशेष घटना जानना आवश्यक है। कहा जाता है कि ये पहले हिन्दू थे परन्तु एक रंगरेजिन मुस्लिम युवती की काव्यकला पर मुग्ध होकर उससे विवाह तथा धर्म-परिवर्तन कर लिया था। इससे ज्ञात होता है कि इनमें कितनी भावुकता, रसिकता, कलाप्रियता एवं स्वच्छन्दता थी जिसकी व्यंजना आलमकेलि में भी मिलती है। कुछ आलोचकों का यह भी अनुमान है कि इस ग्रंथ के बहुत से छन्द जिनपर शेर की छाप है, इनकी पत्नी द्वारा रचित हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

'आलम केलि' में संयोग एवं वियोग शृंगार की विभिन्न परिस्थितियों, दशाओं, अनुभूतियों के साथ-साथ राधा-कृष्ण की लीलाओं का भी चित्रण यत्र-तत्र हुआ है। अतः कहा जाता है कि उनके स्वच्छन्द प्रेम पर उस युग के उस युग के कृष्णभक्त कवि एवं काव्य का भी थोड़ा बहुत प्रभाव अवश्य था। इनके काव्य में प्रेम के विभिन्न पक्षों का चित्रण अनुभूतिपूर्ण शब्दों में हुआ है। इनकी वैयक्तिक प्रेमगाथा सुखान्त में परिणत होजाने के कारण इनकी विरह-वेदना में वह गंभीरता नहीं आ सकी है जो इस परम्परा के अन्य कवियों में मिलती है तथा उसमें कहीं कहीं कामुकता, अश्लीलता एवं नग्नता के दर्शन भी होते हैं। फिर भी उनमें पर्याप्त सरसता एवं प्रभावोत्पादकता है।

आलम जौन से कुंजन में करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं। नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं। जा बन कान्ह विहार अनेकन ता बन काँकरी बैठ चुन्यो करैं। जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं।

पंक्तियों से आलम की काव्यप्रतिभा, सरसता एवं उनकी शैली की प्रौढ़ता का परिचय मिलता है। निस्सन्देह उन्हें उच्च कोटि का कवि कहा जा सकता है।

(3) घनानंद :

17 Tue

हिंदी में घनानंद या आनन्दघन नाम के अनेक कवि मिलते हैं जिनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को विभिन्न इतिहासकारों ने घुलामिला दिया है जिनसे अनेक भ्रांतियाँ उत्पन्न हो गयी हैं। डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त के अनुसार सुजान प्रेमी घनानंद एवं भक्त कवि घनआनन्द दो भिन्न व्यक्ति हैं, दोनों की रचनाओं की मूल भावना एवं अभिव्यंजना शैली में पर्याप्त भेद है। आनन्दघन संभवत: चैतन्य सम्प्रदाय में दीक्षित थे तथा उन्होंने भक्तिभावपूर्ण पद लिखे। अहमदशाह दुर्रानी के आक्रमण में आनन्दघन ही मारे गये थे न कि घनानंद। प्रस्तुत घनानंद मुगल सम्राट मुहम्मद शाह रंगीले (18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध) के मीर मुंशी थे। वे दरबार की एक वेश्या सुजान पर आसक्त थे। इसी कारण अंत में इन्हें दरबार छोड़ना पड़ा तथा वे जीवन भर सुजान के विरह में तड़पते रहे। सुजान विरह ही इनकी समस्त कविताओं का प्रेरणा स्रोत एवं विषयवस्तु है। विरह की सच्ची प्रेरणा से काव्य-रचना करने के कारण इनके काव्य में एक ऐसी सहजता एवं स्वाभाविकता आ गई है जो अन्यत्र बहुत कम दृष्टिगोचर होता है। इसी प्रेरणा की ओर संकेत करते हुए इन्होंने स्वयं लिखा है — 'लोग हैं लागि कवित्त बनावत, मोहि तो मेरे कवित्त बनावत।'

घनानंद ने सौंदर्य, प्रेम और विरह का चित्रण अत्यन्त सूक्ष्म, मार्मिक एवं उत्कृष्ट रूप में किया है। उन्होंने अपनी प्रेयसी के सौंदर्य का अंकन करते समय अपनी परिष्कृत रुचि एवं सच्ची अनुभूति का परिचय दिया है : झलके अति सुन्दर आनन औँर छके दृग राजत कानति है
हँसि बोलनि मे छवि फूलन की बरखा उर ऊपर जाति है है

18 Wed

कर लोल कलोल कपोल करे कल कंठ की बनी जलजाति है, अंग अंग तरंग उठै दुति की परिहै मनोरूप अबै धर च्वै
घनानंद के प्रेम में विरह की प्रधानता है। वस्तुत: उनका काव्य विरह काव्य है। विरही हृदय की विभिन्न अवस्थाओं, दशाओं एवं अनुभूतियों की व्यंजना इन्होंने अत्यन्त गंभीर एवं उदात्त रूप में की है। प्रणय विभोर मन की ऐसी कोई भी वृत्ति नहीं है जिसका सहज एवं स्वाभाविक चित्रण घनानंद के काव्य में उपलब्ध न हो। प्रिया के प्रति उपालम्भों में अत्यन्त दैन्यता, विकलता एवं प्रलाप भावों की अभिव्यक्ति हुई है :

मीत सुजान अनीति करौ जिन हा हा न हुजिए मोहि अमोही।
दीठी को और कहूँ नहि ठौर फिरी दृग रावरे रूप की दोही।

का प्रयोग हुआ है। उनकी उक्तियों में प्रणय की मर्म स्पर्शी शब्दों में की है। उनकी उक्तियों में प्रणय की घनानंद की विरह-वेदना की व्यंजना में अत्यन्त मर्मस्पर्शी शब्दों सच्ची आकुलता व्यक्त हुई है। भावात्मकता सच्ची अनुभूति, भावना की सच्ची प्रेरणा एवं वेदना की सच्ची आकुलता आदि की दृष्टि से भी इनकी के साथ शैली की प्रौढ़ता, सशक्तता, लाक्षणिकता, व्यंजनात्मकता आदि की दृष्टि से भी इनकी पंक्तियाँ ब्रजभाषा काव्य के प्रौढ़तम रूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। मुक्तक काव्य में घनानंद के कवित्त-सवैये हिंदी मुक्तकों के सौंदर्य की चरम सीमा का स्पर्श करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

(4) बोधा : बोधा का मूल नाम बुद्धसेन बताया जाता है। ये पन्ना दरबार के आश्रित थे तथा सुभान नामक वेश्या से प्रेम करते थे। यही इनके काव्य की आलम्बन एवं प्रेरणा स्रोत है। बोधा का रचना काल 1773-1803 ई० माना जाता है। इनके मुक्तकों में सौंदर्य, प्रेम और विरह का चित्रण मार्मिक रूप में हुआ है : एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को ×××
जान मिलै तो जहान मिलै नहि जान मिलै तो जहान कहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहि जान मिलै तो जहान कहाँ को। ××
कबहूँ मिलबो कबहूँ मिलबो यह धीरज ही मे धरैबो करै। उरते कढ़ि आवैं गरे ते फिरै मनकी मन ही मे सिरैबो करै।

कवि बोधा न चाह सहीक बहू नित ही डरबो सों हिये बो करै।
सहते ही बने कहते न बने मन ही मन पीर पिरैबो करै।

वस्तुत: भावपक्ष की गंभीरता एवं मार्मिकता की दृष्टि से बोधा पूर्णत: घनानंद के लघु संस्करण हैं परन्तु इनकी अभिव्यंजना शैली में उन की सी स्वच्छन्दता, परिष्कृति एवं प्रौढ़ता परिलक्षित नहीं होती। इन्होंने 'विरहवारीश' नाम की एक रोमांटिक कथा भी लिखी है। इनके मुक्तक संग्रहों में - विरही सुभान, दंपति विलास, इश्कनामा, बारहमासा आदि उल्लेख्य हैं।

(5) ठाकुर :

इस नाम से हिंदी में अनेक कवि हुए हैं। परन्तु कवि का जन्म ओरछा में 1766 ई० में हुआ था। इनकी कविताओं का संग्रह लाला भगवानदीन ने 'ठाकुर ठसक' नाम से प्रकाशित करवाया था। यद्यपि इस परम्परा के अन्य कवियों की भाँति ठाकुर के व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में स्वच्छन्द प्रेम की कोई गाथा प्रचलित नहीं है, फिर भी वे अपने विशिष्ट दृष्टिकोण के कारण इस परम्परा में आते हैं। उन्होंने अपने युग के शास्त्रबद्ध मुक्तककारों पर व्यंग्य करते हुए लिखा है :

सीखि लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन, सीखि लीन्हों जस और प्रताप को बखानो है
सीखि लीन्हों कल्पवृक्ष कामधेनु चिंतामनि, सीखि लीन्हों मेरु और कुबेर गिरि आनो है
ढेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच लोगन कवित्त करबो खेल करि जानो है।

प्रणयानुभूतियों की व्यंजना इन्होंने अत्यन्त सहज स्वाभाविक रूप में किया है :

वा निरमोहिन रूप की रासि जऊ उर हेतन ठानति ह्वै है, बारहि बार लीन्हो कि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वै है
ठाकुर या मन कौं परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है, आवत है नित मेरे लिए इतनो तौ विशेष कै जानति ह्वै है।

वस्तुत: इन्होंने प्रणयी हृदय की सामान्य बातों को भी पूर्ण सरलता के साथ प्रस्तुत किया है। यह बात दूसरी है कि वैयक्तिक विरहानुभूतियों के अभाव के कारण इनकी कविता में वह गंभीरता नहीं आ पाई है जो इस परम्परा के अन्य कवियों में मिलती है।

(6) द्विजदेव :

इस परम्परा के अंतिम कवि अयोध्या के राजा मानसिंह माने जाते हैं जो द्विजदेव नाम से कविता करते थे। इन्होंने भी ठाकुर की भाँति प्रणय-भावना की अभिव्यक्ति सहज स्वाभाविक रूप में की है। 'दूजो वही सखि लीनो सरूप सो मो अँखियान कों लोन भइ लगि x x x एहो ब्रजराज मेरो प्रेमधन लूटिबे को बीरा खाय आये कित आपके अनोखे नैन x x x हंत्य इन कुंजन ते पलटि पधारे स्याम देखन न पाई वह मूरति सुधामई आवन समय मे सबाई न भई री लाज, चलन समय मे चल पलन दगा दई।' - ये पंक्तियाँ उनकी प्रणयानुभूतियों की अत्यन्त सहज स्वाभाविक अभिव्यक्तियों की परिचायक हैं। इनके दो मुक्तक संग्रह - श्रृंगार बत्तीसी एवं श्रृंगार तिलक प्रकाशित हैं। यद्यपि घनानंद, बोधा की उच्चता एवं गंभीरता इन में नहीं है, फिर इनके काव्य में सरसता है। इन्होंने अपनी परम्परा के अन्य कवियों की अपेक्षा ऋतुवर्णन में अधिक रुचि दिखाई है जिसकी प्रशंसा में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है - "ऋतु वर्णन में इनके हृदय का उल्लास उमड़ पड़ता है। बहुत से कवियों के ऋतुवर्णन हृदय की सच्ची उमंग का पता नहीं देते रस्म सी अदा करते जान पड़ते हैं पर इनके चकोरों की चहक के भीतर इनके मन की चहक भी साफ झलकती है। एक ऋतुवर्णन के उपरान्त दूसरी ऋतु के आगमन पर इनका हृदय अगवानी के लिए मानो आप से आप आगे बढ़ता था।"

द्विजदेव इस परम्परा के अन्तिम कवि माने जाते हैं। यद्यपि इनका प्रभाव परवर्ती कवियों पर भी पाया जाता है विशेषकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कवित्त-सवैयों में इस परम्परा के स्वच्छन्द प्रेम की प्रतिध्वनि स्पष्ट रूप में सुनाई पड़ती है।